मानस रहस्य और साधना

ओम तत्सदात्मने नमः

रामायण या महाभारत के कथानकों में आध्यात्मिक रहस्य की बातें हैं। जैसे महाभारत को ले लो। यहां धृतराष्ट्र अज्ञान है, जो ईश्वर को नहीं देखता, अंधा है वह, अज्ञान है। गांधारी उसकी अर्धांगिनी है, जो उसके सिद्धान्त को, उसके स्वभाव को, धारण करने वाली प्रकृति है। अज्ञान के धर्म की जो धारणा है, वह प्रकृति, वह माया, वह गांधारी है। उसके दुर्मन, दुर्बुद्धि जैसी सैकड़ों संताने हैं, ये दुर्योधन दुशासन वगैरह। वह गांधारी बोल रही है, कि जिन अंगों में मेरी दृष्टि पड़ेगी वे बज्रवत हो जायेंगे, अजर-अमर हो जायेंगे। इसका आशय है, कि जो माया के दायरे में रहेगा, जिस पर उसकी दृष्टि रहेगी, वह ईश्वरीय क्षेत्र में नहीं लाया जा सकेगा। उसका शरीर वज्र का हो जायेगा, और जो माया की दृष्टि से बाहर हो गये। प्रवृत्ति माया क्षेत्र में न रही जिसकी, उस पर माया का प्रभाव न रह जायेगा। वह निकाला जा सकेगा। यह साधन क्षेत्र (अन्तर्जगत) की बातें हैं। एक तो यह संसार है, यह जो बाहर है भौतिक जगत, और एक दुनिया साधक के अन्तर्जगत की होती है। मानस में आया है कि,

'राम नाम मणिदीप धरु, जीह देहरी द्वार।

तुलसी भीतर बाहरौ, जो चाहसि उजियार।।'

यहां भीतर का मतलब अन्तर्जगत और बाहर का अर्थ है यह भौतिक जगत । इस तरह इसमें दोनों तरफ की बातें हैं।

रामायण की कथा तो कॉमन (सामान्य) हो गयी, सबके लिए बाहर की बात। और यह रामचरित अगर मानस में ले लिया जाय तो यह साधकों के लिए है। जो अन्तर्जगत से जुड़ कर साधना करना चाहते हैं। मानस शंकर जी की रचना है।

रचि महेश निज मानस राखा।

पाइ सुसमय शिवा सन भाषा।।

शंकर संत को कहते हैं। जो शंकाओं का निवारण करे, उसे शंकर कहते हैं। संत ही यह काम करते हैं, जो साधकों की शंकाओं का निवारण कर सकते हैं। ऐसे महात्माओं को, संत महापुरुष को, शंकर कहते हैं। इस दृष्टि से, मानस से अगर लिया जायेगा, तो सुरति चाहे भगवान में लगा दो, भक्ति करो। वह भी कर्तव्य है। चाहे दुनिया के कामों में लगा दो, वह भी कर्तव्य है। दोनों कर्तव्य ही तो हैं। समस्या

क्या है? एक ईश्वर अनुकूल कर्तव्य है, दूसरा इस अनुकूल के प्रतिकूल कर्तव्य है। यह दो बनकर तैयार हो गये। अब विचार करो कि राम जो राजा थे, अगर उन्होंने त्याग किया था, तो क्या उन्हें बन्दरों के बजाय मनुष्यों का समाज नहीं बनाना चाहिये? आदमी कऔर बन्दरों की यह संगति ठीक नहीं लगती। अशोक वाटिका में जब हनुमान सीता से मिले, तो सीता ने यही पूछा था, हनुमान से कि,

नर वानरहि संग कहु कैसे।

ऐसा तो संसार में कहीं देखा सुना नहीं गया। लेकिन गोस्वामी जी ने बन्दरों को दिखाया। क्योंकि मानस के हिसाब से, बन्दर ही ठीक समझा गया। राम के साथ कम्पोजीशन में सुविधा होगी, आध्यात्मिक दृष्टि से। इसलिए रामायण के इन सब प्रसंगों और पात्रों को साधक अपने अन्दर देखता है।

बालि कहते हैं, सबसे बली को। बालि है संसारीकर्तव्य। और कर्तव्य में ऐसी क्षमता होती है, कि जो इसके सामने होता है, उसकी ताकत इसमें आ जाती है। और उसकी अपनी ताकत होती ही है। तो दूसरा हार जाता है। अब कैसे आ जाती है? मान लो तुम किसी कर्म को कर रहे हो तो इसमें तुम्हारी इनर्जी लगेगी। यह तो विज्ञान का सिद्धांत है कि कोई भी क्रिया बिना इनर्जी के हो नहीं सकती। फिर एक काम के पीछे अनेक काम करने पड़ेंगे, और अधिक इनर्जी लगेगी। इस तरह कर्म बढ़ता जाता है सामने वाले की ताकत खींच लेता है। इसलिए इस कर्मरूपी बालि को कोई जीत नहीं सकता है। यह युक्ति से मारा जाता है। ईश्वरोन्मुख जो सुरति होती है, वही उसका भाई है, सुग्रीव। संसारोन्मुख सुरति बड़ी बलवान होती है। यह दोनों अन्तःकरण में होते हैं। इसलिए सहोदर भाई हैं कर्म की दृष्टि से। क्योंकि भजन करना भी कर्म है, और भजन का विरोध करना भी कर्म है। यह भाई तो हैं, पर हैं एक दूसरे के विरोधी। इसलिए इनका युद्ध होता है। अच्छा अब थोड़ा पीछे चलो। यह पाँच तत्वों का जो शरीर है, यही पंचवटी है। जब शरीर के स्तर पर साधना कर लेता है साधक, तो पंचवटी में निवास हो जाता है। कुम्भज ऋषि के आदेश से। यह नाभि कमल ही कुम्भज है। जब इससे ऊपर उठ जाता है साधक, तब पंचवटी में निवास हो जाता है। तो जानते हो? साधक को हमेशा निरपेक्ष रहना चाहिये। जहां कुछ इच्छा हुयी, तो फंस गया–

इच्छइ काया, इच्छइ माया, इच्छइ जग उपजाया।

कामिनी सूपनखा से तो बच गये, लेकिन कंचन मृग मे फंस गये। तो क्या होगा? इनर्जी चली जायेगी। शक्ति चली जायेगी। सीता चली गयी। मोह को मौका

मिल गया। मोह रावण है। अगर साधक का मन कंचन की कामना से भर गया तो यही माया मृग बन गया। तो उसकी क्षमता रूपी सीता हर ली गयी। अब सीता को लेकर चला रावण। गीध जटायु मिला। सीता को बचाने के लिए रावण से लड़ा। रावण ने पंख काट दिये। गीध क्या है? यह मुंह है। मुंह का कहना नहीं चल पाया। साधक को बार-बार चेताया जाता है, कि इच्छा न करो, लेकिन नहीं सुनता। इस तरह मुंह का कहना न चल पाया, यह जटायु के पंख कटना और उसका अंत होना है। फिर आगे कबंध मिला। जो पूर्व जन्म के खराब कर्म हैं, वही खराब कर्मों का केन्द्र कबंध है। जब कबंध को मार दिया, अर्थात भजन के द्वारा बुरे संस्कार कटे तो शक्ति के जाने से जो कमजोरी आयी थी, उसमें कुछ राइज हुआ साधक। तो झट आगे, सन्तोषरूपी सबरी मिल गयी, मन की मस्ती रूपी मतंग ऋषि के दर्शन हुए। आगे प्रेम रस रूपी पम्पासर मिल गया। यह सब साधक के अन्तर्जगत में घटित होता जा रहा है। फिर आगे चले, साधना में प्रगति हुई, तो वैराग्य ी पलटन तैयार करते। बाहरी दृष्टि से मनुष्यरूपी हनुमान मिल गया। वैराग्य आ जाने से, सुरति भगवान से जुड़ गयी- सुग्रीव की राम से मित्रता हुई। सुरति ही सुग्रीव है। यह सजातीय कर्तव्य, जो विजातीय कर्मरूपी बालि का विरोधी है, उसने राम को बताया, कि इन सात ताड के पेड़ों को जो एक ही बाण से गिरा देगा, वही बालि को मार सकता है। यह सात पेड़, साधना की सात भूमिकाएं हैं। जब साधक शुभेक्षा, सुविचारणा, तनु मानसा, सत्वापत्ति, असंसक्ति, पदार्थअभावनी, तुर्यगा- इन भूमिकाओं को पार कर लेता है, तो कर्म रूपी बालि को समाप्त कर देता है। उसको त्याग रूपी तारा, अनुराग रूपी अंगद, ब्रह्मज्ञान रूपी बन्दर मिल जाते हैं। फिर आगे बढ़े तो नियम रूपी नल-नील की सहायता से, संयम रूपी सेतु की रचना करके, इस संसार रूपी समुद्र को- जिसमें विषय का जल भरा है- पार करके आसक्ति रूपी लंका पर चढ़ाई किया। मोह-रावण, क्रोध-कुम्भकरण, काम-मेघनाद, इन राक्षसों का वध करके, जीव रूपी विभीषण को राजा बना दिया। स्वरूप में स्थिर कर दिया। और शक्ति रूपी सीता को प्राप्त कर लिया। इस प्रकार अगर कर सकता है, तो अपने स्वरूप में स्थित होकर, निर्लेप रह सकता है जीवन में। निर्लेप अर्थात वेट रहित हो जायगा, भार रहित। फिर हवा में तैरना आ जाता है। तैरना रूप त्याग आ जाता है। यह सुषुप्ति होती है। इस तरह से सुषुप्ति से तुर्या। तुर्या से तुर्यातीत, फिर अतीतातीत अवस्थाएं क्रमशः मिल जाती हैं। फिर त्याग का भी त्याग हो जाता है। तीव्र त्याग का भी त्याग। उस स्थिति की अनुभूति हो सकती है, कहने में नहीं बनता। जैसे राकेट का इजंन पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण तक काम करता है, फिर अंतरिक्ष में भार

रहित हो जाता है। ऐसे ही वह ईथर की तरह, निर्मल आकाशवत निर्लेप हो जाता है। निर्लेप रह सकता है। तो इस तरह से जब सारे कर्माशय निकल जाते हैं, तब परिणाम मिल जाता है। यह समझने की चीज़ है। साधना तो गुरु में है।

अब देखो, रामायण में राक्षसों को दिखाया गया है। जब हम साधना करेंगे तो पता लगेगा कि ये सब हमारे अन्दर के दुर्गुण हैं। हमारा अन्तर्जगत इन्हीं असुरों से त्रस्त है। इन्हे एक-एक करके खतम करना है और अपने अन्दर सद्गुणों को लाना है। जब हनुमान लंका में गये, तो पहले रावण का लड़का अक्षय कुमार मिल गया, उसे मारा। इस तरह से कई लड़के थे रावण के। प्रहस्त था, मेघनाद था, और भी थे। ऐसे ही नारान्तक था। कुम्भकर्ण जैसे भाई थे, परिवार था। तो रावण है, तो ये सब हैं। मोह रावण है,

मोह सकल ब्याधिन कर मूला। पुनि तेहि ते उपजहि बहुसूला।।

मोहग्रस्त आदमी के अन्दर काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर, ईर्ष्या, द्वेष आदि सारे विकार भर जाते हैं। ये विकार ही दुख देने वाले राक्षस हैं। इनमें काम, क्रोध और लोभ सबसे खतरनाक हैं,

तात तीन अति प्रबल खल, काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि विज्ञान धाम मन, करहिं निमिष महं छोभ।।

यही जीव की अधोगति के कारण हैं। अन्तःकरण में इन्हें, साधक एक-एक करके मारता जाता है। एक-एक पर कन्ट्रोल करता है, और साधना में आगे बढ़ता जाता है। पंचवटी से लेकर यहां तक, इनकी छावनी है। जिसमें त्रिशिरा है, खरदूषण है और इनके 14 हजार राक्षस हैं। सबसे प्रबल है, ईर्ष्या, स्पर्धा-मैं आगे बढ़ जाऊं। मैं पिछड़ा जा रहा हूँ, मेरे साथ उसने ऐसा किया, मैं ऐसा करूंगा। यह कम्पटीशन, बैर-विरोध, यह सब खरदूषण की सेना है। ईर्ष्या ही खर है, द्वैष दूषण है, उनके पीछे जो अनेक दोष लगे हैं, ये 14 हजार राक्षस हैं, जो 14 अध्यात्मों को खाते हैं, पकड़-पकड़ कर। जिसमें सबसे पहले अटैक करती है, वह अविद्यारूपी सूपनखा, जो हमारे साधन को नष्ट कर सकती है। वह सूपनखा इन राक्षसों को जगाती है, सचेष्ट करती है। देखो, तुम पड़े सो रहे हो, तुम्हारे रहते मेरी यह दशा हो गयी। मेरी नाक कट गयी है। तब ये लोग जाग जाते हैं, और कहते हैं, हम ऐसा कर देंगे, वैसा कर देंगे। ऐसे अकड़-अकड़ कर चलते दिखाये जाते हैं-रामलीला में। है सब अन्दर का नाटक। समझने वाले समझते हैं, और जो नहीं समझते, उनसे मतलब नहीं है। साधक के हृदय में यह लड़ाई अनवरत चलती रहती है, जब वह भजन करने लगता

है। तो चाहे भजन कहो, चाहे युद्ध कहो, चाहे साधना कहो, ये तीनों एक ही के नाम हैं। नाम अलग-अलग हैं, क्रिया एक ही है। प्रारम्भ में साधक छोटे-छोटे दोषों पर विजय प्राप्त करता है। ईर्ष्या द्वैष को खतम किया। इच्छा को मार लिया, इच्छा ही अक्षय कुमार है। आसक्ति को हटाया, आसक्ति लंका को जला दिया। दूसरों की निंदा से हट गई, दूसरों की बड़ाई करने से आसक्ति हट गई। ईर्ष्या से हट गई। द्वेष नहीं करते। झूठ नहीं कहते। ऐसे हम धीरे-धीरे इनसे अनासक्त होते जाएंगे तो देखो, ये विकार कहीं चले नहीं जाते हैं। ये अजर-अमर हैं। दानव और देव दोनों अजर-अमर हैं। ये कभी किसी को दिखाई नहीं देते हैं। ये आकाशवत होते हैं, वेटलेस (भार रहित) होते हैं। इनमें वजन नहीं होता। ज्ञान, वैरागय, क्षमा दया, संतोष इनमें वेट नहीं होता। इन्हें कोई पकड़ नहीं सकता। ये चाहे इधर चले जायें, चाहे उधर चले जायें। इन्हें कोई देख नहीं सकता। ये निरवयव रहते हैं। ये तो सूक्ष्म जगत की समाज है। यह सब सदगुण दुर्गुण सूक्ष्म जगत की--अन्तःकरण की -चीज़ है। बाहर तो सूक्ष्म जगत है नहीं। तो इस तरह से साधक के अन्तःकरण में ही, ये देव और दानव, सुर और असुर, देवता और राक्षस, ये निवास करते हैं। किसी साधक के हृदय में, कभी कोई हारा, तो कभी कोई जीता। यह संघर्ष चलता रहता है। यही राम-रावण युद्ध या कृष्ण-कंस युद्ध या और कोई लड़ाई कहो, यही है। यह तो सदैव बना रहता है। इसलिए, यह समझ लेना चाहिये, कि यह युद्ध कभी जा नहीं सकता। यह जा सकता है तब, जब साधक ही रुचि पैदा करे।

रामायण के अनुसार, सबसे पहले रावण के परिवार के सब राक्षस मरे, और रावण सबसे अन्त में मरा। तो हम बताने लगते हैं, कि रावण मोह का प्रतीक है, मेघनाद काम का प्रतीक है, नारांतक लोभ का प्रतीक है, कुंभकरण क्रोध का प्रतीक है। और मोह इन बुराइयों का राजा है। ये सब एक-एक करके मरे। गोस्वामी जी ने ऐसा लिख दिया, तो क्या ये सब मरते ही चले गये? नहीं, ये मरते नहीं हैं। ये तो अजर-अमर हैं। हां, साधक का पिंड इनसे छूट जाता है। साधक अनासक्त हो जाता है, इनके प्रति, एक-एक करके। फिर जो बचे समूह में आ जाते हैं। उन्हें भी जीत लेता है। फिर रावण भी मर जाता है। और जीव रूपी विभीषण, ब्रह्माकार होकर राजा बन जाता है। जिस साधक के अन्तःकरण में यह प्रक्रिया हुई, वह मुक्त हो गया। खुशी मिल गयी। खुशी कहां हुई थी-राम राज्य में। तो विभीषण और राम में कोई अन्तर नहीं है (जीव और ब्रह्म) दोनों एक ही है, जब एकाकार हो जाते हैं। उसी में ओत-प्रोत हो जाता है। और जब ऐसी अभिन्नता हो गई तो राम राज्य ही विभीषण का राज्य हो गया। अवध बन गयी, बदल कर आसक्तिरूपी लंका। साधक अनासक्त

हो गया। व्यापक हो गया। तो व्यक्तिगत उसका उद्धार हो जाता है। और अनंत संसार, जो अनंत काल से है, अनंत दुर्गुणों, सद्गुणों से भरा हुआ है, अनंत कलाओं से परिपूर्ण है, उसका अन्त नहीं होता। वह तो आटोमैटिक है। चलता रहता है, बस एक साधक के अंदर यह समाप्त हो जाता है। वह अपने स्वरूप में मिल जाता है। यह व्यक्तिगत उसकी साधना के फलस्वरूप, उसमें घटित होता है। और परमात्मा जो व्यापक होता है, जब उसे तसदीक कर देता है, तो मुक्त हो जाता है। इसके पीछे और बहुत सी बातें हैं। रावण का विनाश एकाएक तो होता नहीं है। साधक शुरू में छोटी-छोटी बुराईयों पर हावी होता है। अर्थात छोटे-छोटे राक्षसों को मारता है। फिर धीरे-धीरे समझ काम करती जाती है, तो फिर और बड़ों को एक-एक करके मारता गया, बढ़ता गया। बारीकी आ गयी, तो रास्ता दिखा दिया गया। निकल जाता है। कल्याण हो गया। प्रक्रिया सबके लिए एक ही है, अलग-अलग नहीं है।

अब तुम्हारे लिए, साधक के लिए सबसे पहले समझने की बात है, कि साधक के अंदर यह क्रिया होती है। क्रिया कहां से होती है? क्रिया वहां से होती है, जहां परस्पर विरोधी तत्वों का सम्मिश्रण होता है, उसमें क्रिया होती है। असल में, ये ऐसे तत्व हैं, जो सूक्ष्म हैं। हम लोग तो स्थूल जगत के निवासी हैं। यहीं के नियम-कानून में रचे-पचे हैं। इसलिए बातें चाहे स्थूल जगत की हों, या सूक्ष्म जगत की, हम अपने ही ढंग से उन्हें लेते हैं। अपने ही पैमाने से नापते हैं। इसलिए यह बताने में, और समझने में बड़ी दिक्कत या त्रुटि आती है। सूक्ष्म जगत की बातों को, स्थूल जगत के कायदे-कानून से लेने में, ठीक नहीं बैठता। अब जैसे हनुमान है वैराग्य, बहुत बलवान है। इच्छा को मार सकता है। आसक्ति को मिटा सकता है। अभिमान या अहंकार को मार सकता है। तो अन्तःकरण में ज्ञान है, वैराग्य है, अनुराग है, विवेक है तो ये अलग-अलग नहीं हैं। जो अनुराग है वही वैराग्य है, जो वैराग्य है वही ज्ञान है, और जो ज्ञान है वही विवेक है। ये सब एक ही बातें हैं। इनमें से कोई भी, कहीं भी क्रिया कर सकता है। इसलिए इस मूल चीज़ को हमेशा याद रखना चाहिए। अपने अन्दर देखना चाहिए कि यह कैसे हो रहा है? हम बताएं, तो साधक को छोड़ना नहीं चाहिए। जो इनर्जी ज्ञान में काम करती है, वही इनर्जी विवेक में काम करती है। जो गाइड की अंतर्जगतीय क्षमता, एक में काम करती है, वही दूसरे में काम करती है, तीसरे में करती है, चौथे में काम करती है। ताकत तो एक ही है। यह तो हमारे यूज़ (प्रयोग) करने का तरीका होना चाहिये। तो कौन, किसे मारता है, यह मतलब नहीं है। यह एडजस्टिंग अन्दर रहती है। यह तो बताने का तरीका है। यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। प्रसंग तो दूसरे-दूसरे हैं। कथानक

बन जाते हैं, और है वहां कुछ नहीं। अन्तःकरण में यह सब घटित होने में समय नहीं लगता है। बताने में तो समय लगता है। इसलिए यह कम्पोजीशन समझ लेना चाहिये। अन्दर की कलाबाजियां, बिना इसके पकड़ में नहीं आतीं। अब जैसे रावण का परिवार है, तो एक-एक करके मरते गए। तो फिर दूसरे को बुलाया, फिर तीसरे को, कुंभकर्ण को, नारान्तक को बुलाया। सब मरते गए, तो अहिरावण को खबर कर दिया। उसे खबर मिली तो उसने कहा, क्या बात है भाई? तो बताया कि अरे! तुम वहां पड़े मस्ती काट रहे हो, यहां ऐसा-ऐसा हो गया। तो देखो, रावण को सभी ने कहा है, कि तुमने खराब काम किया। राक्षस भी जानते हैं। सद्गुण और दुर्गुण दोनों एक हैं। लेकिन यह सुप्रीम लेबिल में जब हम पहुंचेगे, तब। और जब हायर लेबिल में हैं, तब तक दुगुर्ण, दुगुर्ण हैं, और सदगुण, सदगुण हैं।

तुलसी दास जी ने ऐसा कम्पोजीशन इसलिए दिखाया है, कि वह बताना चाहते हैं, कि सद्गुण औरदुगुर्ण एक दूसरे के पूरक हैं। सद्गुण, दुर्गुण की पैदाइस करते हैं। और दुर्गुण, सदगुणों की पैदाइस करते हैं। इसलिए दोनों एक समान हैं। जब तक निम्न श्रेणी में हैं, तब तक दुर्गुण में फंसे रहते हैं। जब हायर लेबल पर आ गए, तो संघर्षरत होकर, सद्गुणों का सहारा लेकर, दुर्गुणों को समाप्त करते हैं। और सुप्रीम लेबल पर, दुर्गुण-सद्गुण दोनों से परे, गुणातीत हो जाते हैं। दुर्गुण का सद्गुण में ट्रांसफार्म हो गया। सद्गुण का ट्रांसफार्म गुणातीत में हो गया, और गुणातीत का परमात्मा में ट्रांसफार्म हो गया। वहां तुरीया हो गई। और अहं जो है वह द्रष्टा में बदल गया। और द्रष्टा, दृश्य से परे हो गया। अज्ञाता, ज्ञाता में बदल गया। ज्ञाता, विज्ञाता में बदल गया। विज्ञाता, अविज्ञाता में बदल गया। जागृति, स्वप्न में बदल गई। स्वप्न, सुषुप्ति में बदल गई। सुषुप्ति, तुर्या में बदल गई। तुर्या, तुर्यातीत मे बदल गई, और फिर वह अतीतातीत हो गई। एक अवस्था में कैसा क्या होता है? दूसरी में कैसे-कैसे होता है? फिर तीसरी में, फिर उसके बाहर हो गये। आगे बढ़ गये। तो यह सब बड़ी बारीकी से समझना चाहिये। खूब बुद्धि लगाकर समझो। यह सब मानस का रहस्य समझे बिना बहिर्मुख वृत्ति से साधना नहीं बन पाती।

हाँ, तो यह बात बताने वाले थे हम, कि साधक क्या करता है। साधक जब साधना में रत होता है, और जब अच्छी साधना करता है, तो पहले रावण के संबधियों को मारता है। फिर और अच्छी साधना करता है, काफी ऊंचे स्तर की, तब कुंभकर्ण आदि को मारता है। फिर हाइएस्ट (उच्चतम) लेबल पर जाकर, अहिरावण को मार पाता है। यह अहंकार है, जो पाताल में रहता है। अहंकार सबसे गहराई में छिपा रहता है। अहंकारी का सिर नीचा, ऐसा भी कहा जाता है, इसलिए भी इसे

पाताल में रहना दिखाया गया है। अहंकार में यह क्षमता है, कि यह आत्मा को भी दबा लेता है। राम-लक्ष्मण को ले गया हरण करके, और देवी में बलि देने को था। मतलब यह है अहंकार साधक के ज्ञान और विवेक को हर लेता है। विभीषण का रूप बना लेता है। जीवात्मा का रूप ले लेता है। इसलिए यह सबसे अंत में मारा जा सका। अहंकार में जो क्षमता है, वह काम, क्रोध, लोभ आदि मे नहीं है। यह विभीषण का रूप बना लेता है, आत्मा को भी छा लेता है। ऐसे ही कृष्णचरित्र में आता है कि पौण्ड्रक एक राजा था। वह स्वयं को कृष्ण कहने लगा- पौण्ड्रक-कृष्ण। इस प्रकार जो यह अहंकार है, साधक को बहुत आगे तक नहीं छोड़ता है। होता क्या है, कि जब साधक को काम पर विजय मिल गयी। क्रोध को जीत लिया। लोभ पर विजय मिल गयी। इच्छाओं पर भी काफी काबू पा लिया। तो उसे अन्दर ही अन्दर बड़ी ताकत महसूस होती है। उसका साहस बढ़ जाता है। उसके अन्दर एक प्रकार का 'ईगो' तैयार हो जाता है। उसे लगने लगता है, कि अब तो मोह को ही जीतना है। एक साहस, हौसला बढ़ जाता है। इस तरह यह है तो शुद्ध भाव, लेकिन यह ईगो (अहंकार) आत्मा को ढक लेता है। अहिरावण, विभीषण के रूप में आ गया। राम और लक्ष्मण को ले गया। तो साधक के हृदय में जब ज्ञान-राम, विवेक-लक्ष्मण, वैराग्य-हनुमान इनको यह लगा कि अब क्या है? अब मोह-रावण ही तो रह गया है। अब कोई बात नहीं है। तो यह जो ईगो आ गया, यही अहिरावण है। विभीषण का रूप ले कर आ गया। विभीषण है जीवात्मा, राजा है। उसका कहना ज्ञान राम, विवेक लक्ष्मण सभी को मानना है। आत्मा सर्वोपरि है। हनुमान से पूछा गया, कहां गये राम लक्ष्मण? बोले पता नहीं, रात में विभीषण आये थे। तब विभीषण ने बताया, कि मेरा रूप अहिरावण ही बना सकता है। उसी ने राम लक्ष्मण का हरण करके पाताल में छिपा रखा है। साधक के अन्तःकरण में जब अहंकार आया, तो ज्ञान-विवेक विलीन हो गये। तब छटपटाता है। पता करता है।आत्मा से संकेत आता है, कि यह अहंकार का परिणाम है। अब अहंकार को मिटाकर, ज्ञान विवेक को फिर से पाना है। तो यह काम कौन करेगा? यह काम हनुमान से ही होगा। जो मान या अभिमान का हनन करता है, वह हनुमान है-वैराग्य। तो अब साधक वैराग्य का सहारा लेता है। तब यह अहंकार नष्ट होता है। वह अन्दर भगवान से क्षमा याचना करता है, कि मुझसे भूल हो गयी। मैंने मान लिया था, कि मैं साधना में आगे बढ़ गया हूँ। मैं इस अभिमान का त्याग करता हूँ। इस तरीके से अभिमानहीनता रूपी हनुमान, अहंकार-अहिरावण को मारकर, ज्ञान, विवेकरूपीराम, लक्ष्मण को फिर से ले आते हैं। थोड़े से समय में यह सब अपने अन्दर घटित हो जाता है। बाहर की

घटनाएं इतने कम समय में कैसे होंगी? इस तरह से यह अध्यात्म चलता है। यह मानस का मूल रहस्य है।

अब रावण को ले लो, रावण मोह है– मोह सकल व्याधिन कर मूला। यह बड़ा बलवान है। इस रावण के दस सिर हैं। सूक्ष्म जगत में दस इन्द्रियों से भोग करता है। इसलिए दशानन कहा जाता है। यह मेरा यह मेरा यही मोह है। और यह तेरा यह तेरा यही प्रेम है। मोहासक्त मन ही रावण बन जाता है। माया के लिए रोता रहता है, इसलिए रावन कहा जाता है। कायारूपी कैलाश में अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब शंकर है। उसे उठाने में हाथ दब गया तो बहुत रोया, इसलिए रावन नाम पड़ गया। यह सन्तों को परेशान करता है। सन्तों से कर वसूल करता है। संत साधक जो खून पसीना लगाकर भजनरूपी कमाई करते हैं–उसे यह मोह छीन लेता है। धनुष वाण लेकर इसे मारते हैं। ध्यान ही धनुष है, त्याग तरकश है। वाणी ही वाण है। यह वाणी, जो शब्दों के रूप में मिलती है। सत्य क्या है–असत्य क्या है? शब्द से पता चलता है। शास्त्र से पता चलता है। शास्त्ररूप शस्त्र से, वाणीरूपी वाण से मोह को नष्ट किया जाता है। गलत को गलत किया जाता है। वाणी के द्वारा साधक के अन्दर का मोह नष्ट कर दिया जाता है। यही तो लिखा है –

बंदउ गुरूपद कंज, कृपा सिंधु नररुप हरि।
महामोह तमपुंज, जासु वचन रवि कर निकर।।

गुरु वाणी से ही हृदय का मोहान्धकार मिटता है।

इस तरह इस मोह या अज्ञान के नष्ट होने पर साधक के अन्दर ज्ञान का प्रकाश हो जाता है। राम की विजय हो जाती है। रावण का दाह संस्कार करके फिर विभीषण राजा बन जाता है। जीवात्मा ही विभीषण है। फिर राम राज्य हो जाता है। विभीषण व्यापक तत्व है। और राम ऐटम (परमाणु) है। उसमें एडजेस्ट हो जाओ, बस काम पूरा हो जाता है। इच्छा से रहित हो जाओ। बाहर से आंख मूंद लो, अन्दर एडजस्ट हो जाओ। बस फिर आखिर में, त्याग का त्याग कर दो। शक्ति का भी त्याग कर दो। सीता का भी त्याग कर दिया गया। इस तरीके से साधक को ध्यान देना चाहिये कि यह कम्पोजीशन कैसे बैठेगा? हां, बैठेगा तो तभी, जब हम क्रिया करेंगे, प्रेक्टिकल करेगें। नहीं करोगे तो भुला जाओगे। बैठा नहीं पाओगे। गड़बड़ हो जायेगा। रटने से काम नहीं बनता। जो लोग ज्ञान के सूत्र बोलते हैं, करते कुछ नहीं हैं, उन्हें कुछ नहीं मिलता। इसके लिए विश्वास होना चाहिये। बगैर विश्वास के परिणाम नहीं मिलता– बिन विश्वास भगति नहीं। तो बगैर विश्वास के, वह ज्ञान हमें

परिणाम नहीं देता है। कार्य मेंपरिणत नहीं कर सकता। और जब विश्वास होता है, तो ईश्वर स्पष्ट हो जाता है। अनुभूति हो जाती है। यह हो तो जाये, लेकिन अन्दर एक ऐसी बीमारी लगी है, कि विध्न डाल देती है। अन्तःकरण में यह जो तर्कना है, कि ऐसा नहीं ऐसा है। यह नहीं यह हो सकता है। यह सही है कि, वह सही है। ऐसी जो तर्कना है, साधक साधना करते हुये इसके चक्कर में पड़ जाता है। यह जो तर्कना है, यह ताड़का राक्षसी है। विश्वास विश्वामित्र है। ईश्वर की जानकारी यज्ञ है। कहानी ऐसी है, कि विश्वामित्र यज्ञ करते थे, तो ताड़का और उसके दो लड़के, मारीच और सुबाहु यज्ञ में विध्न डालते थे। तो वह असफल हो जाते थे। अब साधक में विश्वास आ गया है। अब यह धुरी बन गयी अब इसी मे तुम्हें रहना है। अलग नहीं जाना है। भजन की जगह अपना अन्तःकरण है, जो हर जगह, हर समय, समान रूप से अपने में है। समय और देश करके बाधित न बनो। तो जब साधक में विश्वास आया, तो तर्कना ताड़का मारी गयी। तर्कना को समाप्त किया तो सुबाहु-जो मन का खराब स्वभाव है- वह आ गया। अब जैसे मन में स्त्री का चिंतन करने की आदत पड़ गयी, या धन का चिंतन करने की आदत बन जाये, तो यह आदत जल्दी छूटती नहीं। ऐसा स्वाभाव ही सुबाहु है, मन ही मारीच है, जो स्वाभाव को बल देता है। ये दोनों, तर्कना के प्रभाव से साधना में विध्न डालते हैं। लेकिन जब विश्वास दृढ़ हो जाता है, तो भगवान से कम्यूनिकेशन (सम्पर्क) हो जाता है। और तर्कना समाप्त हो जाती है। स्वभाव भी मर जाता है और मारीच को दूर हटा दिया जाता है। अर्थात मन का रूपांतरण हो जाता है। तो यह गोस्वामी जी के अन्दर का कम्पोजीशन है। हो सकता है कि किसी साधक के अन्दर या हमारे अन्दर किसी और तरह का कम्पोजीशन बने। यह साधक की रुचि के अनुसार होता है। किसी में भाव तीव्र होता है, ज्ञान या जानकारी कुछ मन्द होती है। किसी में कुछ, किसी में कुछ। ऐसे में भिन्नता होती है। किसी के कर्म अच्छे होते हैं, समझ कम होती है। किसी के पूर्व पुण्य ज़्यादा हैं, तो वर्तमान के कमजोर हैं। तो इससे साधना में भिन्नता आती है।

गोस्वामी जी की थिसिस के हिसाब से, जैसे ही साधक के अन्दर विश्वास दृढ़ हुआ, तर्कना मिट गयी तो उसे योगिक क्रिया पकड़ में आ जाती है। ताड़का को मारकर जैसे ही आश्रम में पहुंचे, कि पत्र आ गया, राजा जनक के यहां से। राम और लक्ष्मण को फलाहार करा रहे हैं विश्वामित्र, कि उतने में ही दूत, पत्र लेकर आ गये। और बोले, हम राजा जनक के दूत हैं, आपको निमंत्रण भेजा है, राजा जनक जी ने। और कहा है कि मेरी पुत्री सीता का स्वयंवर है, आप कृपा करके ज़रूर पधारें। मैं अपने को भाग्यशाली समझूंगा, आपके दर्शन करके। तो विश्वामित्र ने कहा,

कि अच्छा हम ज़रूर आयेंगे। उधर राम और लक्ष्मण को बताते हैं, कि राजा जनक की एक अति सुन्दर कन्या–सीता का स्वयंवर है। वहां से निमंत्रण आया है। चलोगे हमारे साथ? तो राम लक्ष्मण ने कहा, कि जैसी गुरु महाराज आपकी आज्ञा। तो इससे यह समझ में आता है, कि यह सब क्रिया एक दूसरे से जुड़ी चली आ रही है। चाहे कथाकार या लेखक, कुछ भी यहां का वहां जोड़ कर लिख दे, लेकिन यह है अंतर्जगतीय क्रिया। अब जब तर्कना मार दी गयी, विश्वास दृढ़ हो गया, तो यौगिक क्रिया मिल गयी। जनक का पत्र मिल गया। जनक माने पिता जिससे कोई चीज पैदा होती है। सूक्ष्म में योग ही जनक है। योग से शक्ति–सीता पैदा होती है। योग साधना से साधक को यह शक्ति मिलती है। शर्त है धनुष। ध्यान ही धनुष है। जब भव–धनु अर्थात संसार का ध्यान टूट जाय, यानी परमात्मा में तन्मयता आ जाय। ध्याता, ध्येय और ध्यान की त्रिपुटी मेंएकतानता आ जाय। ध्यान की पूर्णता हो जाये। धनुष, वह भी शंकर का। शंकर, जो अधिष्ठाता है इस काया काशी का। सबसे पावरफुल। शंकर सन्त को कहते हैं। उन्हीं का ध्यान करना है। प्रकृति की तरफ से परशुराम उसका अध्यक्ष है। पुरुष रूप में है, प्रकृति। प्रकृति की ओर से एक्जाम लेने वाला है। इस तरह से जब ध्यान की पूर्णता हो जाती है, तो शक्ति मिल जाती है। सीता का वरण हुआ। जैसे हमने बताया कि पैट बदलने से गाड़ी एक लाइन से दूसरी लाइन पकड़ लेती है। इसी तरह स्थूल की लाइन से सूक्ष्म की पटरी में पैट बदल कर जा सकते हैं। यौगिक क्रिया के द्वारा ध्यान की पूर्णता से, शक्ति मिल जाने से, ईगो आ जाता है। यद्यपि वास्तव में अभी वह, शक्ति सम्पन्न नहीं हुआ है। जहां थोड़ी सी प्रगति हुई, थोडा कम्यूनिकेशन हुआ, तो साधक का मन, मान बैठता है कि मै ब्रह्म हो गया। यह दशरथ उसे गद्दी में बैठाना चाहता है। जब कि अभी अन्दर कचड़ा भरा पड़ा है। अभी तो बस, सजातीयों में ही रहे। अभी तो अन्दर के काम, क्रोध, लोभ, मोह सबको हटाना है। इन्हें मारे बिना, गद्दी में कैसे बैठेगा? पूर्ण प्रज्ञ कैसे हो जायगा? राम–राजा कैसे बनेगा? अभी तो स्थूल की साधना हुई है। अवध की प्रक्रिया पूरी हुई है। स्थूल की साधना को ही अन्तिम मानकर, दशरथ जो गलती कर रहे थे, उसे सम्भाल लिया, कर्तव्यरुपी कैकेयी ने। अब वनवास रुपी सूक्ष्म साधना में प्रवेश मिल गया। चौदह वर्षो के लिए। चौदह आध्यात्म ही चौदह साल हैं। दस इन्द्रियां और चार अन्तःकरण। इन चौदहों का कर्जा चुकाना है। यदि पूर्व जन्म के पुण्य न होते, तो यहीं अधूरे में साधना रुक जाती। साधक का पतन हो जाता। वनवास पर निकलने पर, प्रथम वास तमसा भयो, त्याग ही तमसा है। त्याग आ गया। और निषाद मिल गया। निषाद पूर्व जन्मों के पुण्य को कहते हैं। गुह का

अर्थ है, गुप्त किये हुये पूर्व पुण्य, वह है निषाद। यह पुण्य साधक को चित्रकूट तक पहुंचाता है। भजन रूपी भरद्वाज से मिलते हुये। बीच में कुछ अलौकिक अनूभूतियों से मिलते हुये। बाल्मीकि से मिले। उन्होंने 14 भवन बताये। दस इन्द्रियां और चार अंतःकरण जब ईश्वरीय भावना से भर जाते हैं, तब साधक का हृदय भगवान के रहने योग्य बन जाता है। चित्रकूट में निवास हो गया। पहले सजातीय गुणों को जोड़ा, विश्वास दृढ़ किया, तर्कना समाप्त हुई और उसका एक्जाम (परीक्षा) हुआ जनकपुर में, फिर सूक्ष्म साधना में प्रविष्ट हुये। जब चित्रकूट आ गये, चित्त को कूटस्थ कर लिया। कामदगिरि में निवास किया, कामनाओं को, इच्छाओं को कुछ मिटा दिया, तो फिर से उसका परीक्षण हुआ स्फटिक शिला में। फिटनेस हो रही है, अब यहां। मन में जो इन्द्रियों की तरफ से विषय अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब है वह है इन्द्र। और इनकी जानकारी का नाम है, जयन्त। तो इसने सीता को चोंच मार दिया। शक्ति को आहत किया। साधक में जो क्षमता आयी थी, उसे आघात लगा। तो यह तो होता ही है, साधना में। साधक थोड़ा उठता है, फिर कोई अड़चन आ जाती है, फिर उठता है, फिर गिरता है। यही तो साधना है। ऐसे ही एक साधना करने वाला साधक था। तो हमसे बताया, कि हम तो पतित हो गये। बताया कि जब हम ध्यान में बैठे, तो यह गाना मन में आ रहा था। उसने गा कर बताया–

'परन तोरा टूट्ल ओ भगतिनियां।
जब तू रहली गरभ बास में कहवां से कइली दतुनियां।
परन तोरा टूट्ल ओ भगतिनियां।'

तो इस तरह से साधक को कभी-कभी गिरावट आती है। जब कभी साधन में सफलता मिली और अहंकार आया, तो भगवान उसे ठीक करने के लिये गिरा देते हैं। होता तो वह अहंकार को दूर करने के लिए है, लेकिन साधक पतित मान लेता है, अपने को। पतित होता नहीं है। पतित तो है ही, अब पतित क्या होगा? पतित तो पहले से ही रहा है। अब तो गिरते पड़ते आगे बढ़ रहा है। इसलिये साहस नहीं खोता है– अगर अच्छे गुरु का समझाया हुआ है तो।

अब अटैक होता है, तो शक्ति पर ही तो होगा। राम पर नहीं होगा, लक्ष्मण पर नहीं होगा, शक्ति पर ही होगा। उसी का ह्रास होगा। जयंत का चोंच मारना क्या है? कोई विषय सम्बन्धी पूर्वकाल की बात जब साधन काल में स्मरण आ जाती है, यही है चोंच मारना। और फिर जो सावधान साधक है। मन की इस हीनता को जानकर, साधना में इतना तल्लीन हो गया कि वह विषय का चिन्तन, तीनों लोकों में कहीं

जगह नहीं पा सका और सरन्डर होकर नष्ट हो गया। सींक धनुष सायक सन्धाना। सींक का मतलब है- सूक्ष्म सुरति। गहरी सुरति। ध्यान की गहराई ऐसी, कि उस दुर्गुण को फिर कहीं जगह न मिल सके। तो अब हमें फिटनेस मिल गई। थोड़ा गिरने को हुये, और फिर संभल गये, तो ताकत बढ़ गयी। तो फिर अत्रि-सत रज तम, इन तीन गुणों से अतीत। और अनसूया- असूया कहते हैं माया को। अनसूया अर्थात माया से परे। यह अवस्था साधक को मिल गयी। और फिर एक धक्का लगा, विराध के रूप में। उसे खतम किया, तो फिर प्रगति हो गयी-सुतीक्ष्ण- से भेट हुई अर्थात तीव्र ध्यान में लीन हो गया। तो कुण्डलनी जागृत हो गयी। मतलब कुम्भज या अगस्त मिल गये। वहां बड़े अस्त्र-शस्त्र आदि मिल गये। अर्थात दिव्य विभूतियों से युक्त हो गया साधक। ऐसे आगे चलती जाती है, यह मानस की कथा, यह साधन प्रक्रिया।

साधना काल में, और गैर साधना काल में अंतर आता है। साधक जिसे साधना बतायी गयी है, और आम जनता जो साधना नहीं करती, उसमें बहुत अन्तर आता है। वह भी अपनी-अपनी रुचि के अनुसार- और रुचि हर आदिमी की अलग-अलग होती है। यह जो मनुष्य का शरीर है, उसमें जो स्प्रिट (आत्मा) है, वह पावरफुल है। वह सबमें है, इसलिए सबके पास क्षमता है, सब इन्डिपेन्डेन्ट (स्वतंत्र) हैं, और सब की परमात्मा से आत्मा की टच (स्पर्श) है। लेकिन टच होते हुए भी, उनके क्षेत्र अलग-अलग हैं। जैसे बूंद और समुद्र। बूंद भी पानी और समुद्र भी पानी, दोनों की जाति एक है। लेकिन क्षेत्र या दायरा अलग है। बूंद का क्षेत्र छोटा है, और समुद्र का विशाल क्षेत्र है। एक व्यष्टिगत है, एक समष्टिगत है। इसलिये वह ज़्यादा पावरफुल है। उसमें ज़्यादा क्षमता है। लेकिन इन दोनों मे एक ऐसा रहस्य है, कि अलग होते हुए भी एक हैं। भेद होते हुए भी अभेद है इनमें। और यह इस कारण से है, कि परमात्मा के दो रूप हैं। एक निरवयव और एक सावयव। इसलिये जब हम निर्गुण को पकड़ते हैं, तो वह सगुण बन कर बैठ जाता है। और जब हम सगुण में जाते हैं, तो निर्गुण हो जाता है। इस तरीके से उसके पास दो कलाएं हैं। मनुष्य के पास एक कला है। इसलिये दो कला होने से उसनें आटोमैटिक रूप ले लिया है। वह अपने जैसे अनेक रूप बना सकता है, और क्रिया भी कर सकता है। नाना प्रकार से चमत्कार कर सकता है। उसके पास वीटो (विशेषाधिकार) है, कुछ भी कर सकता है।

यह मन जो है, सारे के सारे कर्मों का मूल कारण है। मन को मारीच कह दिया जाता है। मन कोमाया भी कह दिया जाता है। मन को संकल्प-विकल्प भी कह दिया जाता है। तो कार्य के हिसाब से उसके नामकरण का रूपान्तर होता जाता है। ऐसा

नियम है। जैसे कोई चीज़ है, जो एक क्षेत्र में काम कर रही है, वह उसी क्षेत्र की कही जायेगी। यही सब जो अभी माया क्षेत्र में काम कर रहे हैं, प्रयास करने पर ईश्वरीय क्षेत्र में जाकर काम करने लगते हैं। लेकिन यह बदलते हुए जाते हैं। जैसे सुबाहु है बुरा स्वभाव, अगर यह ईश्वरीय क्षेत्र को ग्रहण कर लेता है, तो वही राक्षस, देवता बन जायेगा। अगर वही देवता, गलत काम करे, तो राक्षस बन सकता है। यह एक धारा है। इसलिए जो कर्तव्य है, उसके अनुसार रुपान्तर होता चलता है। सही का गलत, और गलत से सही हो सकता है। सुबाहु को इस जगह हमने इस तरह प्रयोग कर लिया। स्वभाव जो भगवान के भजन मे न लग कर, पुरानी आदत बस विषय में ले जायेगा, और किसी में ले जायेगा। यह मन भी उसी के साथ चला जाता है। लेकिन राम ने, सुबाहु को मारा, मारीच को नहीं मारा। वहां से हटा दिया। इसका मतलब यह है, कि जब दृढ़ विश्वास साधक मे आ जाता है, तो तर्कना और बुरा स्वभाव छूट जाता है। और मन का रुपान्तरण हो जाता है। मारीच के पास जब रावण गया, तो कुटिया में बैठे नमः शिवाय, नमः शिवाय जप रहा था। रावण ने कहा–मारीच यह क्या करते हो? तो उसने कहा, कि अब मैं भगवान का भक्त हो गया हूँ। नाम जपता हूँ। तो उसने कहा कि नहीं, तुम मेरा कहना करो। मृग बन जाओ, उसकी पत्नी का हरण करना है। तो खैर, ये तो सब नाटकीय तौर तरीके हैं। यह सब बनाना पड़ता है। लेकिन असल बात यह है, कि साधना में विध्न आते–जाते हैं। साधक उन्हें पार करके, आगे बढ़ता जाता है। अगर विध्न न आये, तो साधना मे वह तेजस्विता नहीं आ पाती। जिसका मन भागे ही न, उसे संघर्ष नहीं करना होता। उसे डिग्री नहीं मिलेगी। वह तो मन भागे विषयों में, और साधक उसे पकड़ कर लगाये–भजन में। विध्न आवे, बीमारी आवे, और मन विचलित होने न पावे। लेकिन यह होगा कैसे, कि जब भारी से भारी दिक्कतों का भी हम हंसते–हंसते स्वागत करें। दिक्कत आये, और हम कहें कि आओ। आओ भाई, हम तुम्हारा स्वागत करते हैं। बीमारी आये तो कहो, कि आओ बीमारी आओ, तो बीमारी, बीमारी नहीं रह जायेगी। वह बदल कर बीमारी रहित अवस्था बन जायेगी। त्याग का मतलब यही होता है। ऐसे माया का त्याग, जो साधारण रुप में बताया जाता है–वह अलग है।

महात्मा जो होते हैं, वह विध्न–बाधाओं का स्वागत करते हैं। आओ आ जाओ, मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ। जब हम स्वागत करने को तैयार हैं, तो उसे बदलना पड़ेगा। दुख जो आ रहा है, वह सुख बन जायेगा। दुख तो इसलिये आ रहा था, कि हम उसे चाह नहीं रहे थे। अब हम स्वागत करने को तैयार हैं, तो फिर उसे बदलना पड़ेगा। दुख की जगह, सुख बनना पड़ेगा। नहीं तो वापस चला जायेगा। इस तरीके

से अगर साधक में, यह सब तरीके आ जायं, तो वह प्रगति कर जाता है। आगे बढ़ जाता है। उठ जाता है। उसका रंग-ढंग फिर बदल जाता है।

ऐसे एक कचड़खाना बाजार था। एक जगह वहाँ कचड़े में एक फकीर, बाबा के वेष में पड़ा रहा करता था। कोई कुछ दे तो खा ले, या फेंक दे। चाय दे तो पी ले, नहीं तो उसी में पेशाब कर दे या फेंक दे। ऐसे पड़ा रहे, और उसके मुंह से बस एक ही शब्द निकलता रहे-

'एक अन्दर दो बाहर फट गया, फट गया, फट गया।

एक अन्दर दो बाहर फट गया, फट गया, फट गया।'

बस यही कहता रहे। लोग सोचा करें कि यह कोई सी.आई.डी. है, या तो पागल है, या महात्मा है। कोई सी.आई.डी. होता, तो कुछ दिन रहता, फिर दूसरा वेष बनाता और चला जाता। वह महात्मा था, और बहुत दिनों से महात्मा था। ऐसे महात्मा होते हैं, जो पागल की तरह दिखाई पड़ते हैं। दुनिया हमको पागल समझे, हम दुनिया को पागल समझें। तो अब यह जो बोल रहा था, उसका क्या मतलब था? असल में जब साधना करते-करते उसका ज्ञाता और ज्ञान, ज्ञेय में समाहित हो गये, उसे अनुभूति मिली। बस उसी अनुभूति का मंत्र वह जप रहा था। एक अन्दर दो बाहर फट गया, फट गया, फट गया। एक जो ज्ञान दृष्टि है, दिव्य दृष्टि है-एक है। अन्दर की चीज है। और यह जो बाहर की आंखें है-दो हैं। तो अन्दर की ज्ञान-दृष्टि खुल गयी, तो बाहर की अज्ञान दृष्टि से दिखने वाला प्रपंच निर्मूल हो गया। फट गया, समाप्त हो गया। या हर शरीर में, अन्दर तो सबमें एक ही आत्मा है। और बाहर, नर-मादा दो तरह के शरीर हैं। तो जिसे अन्दर का मिल गया, उसके लिए बाहर का यह भेद मिट गया। तो यह सुख दुख, हानि लाभ, मेरा-तेरा संसार की बातें हैं। आत्मा में यह सब कुछ नहीं है।

इसलिए जितनी परेशानी है, उसे अच्छा मानना चाहिये। अगर बुराई नहीं होगी, तो भलाई का भलाई में ज्ञान कैसे होगा? अगर रुलाई नहीं होगी, तो हंसाई का हंसाई में ज्ञान कैसे होगा? यह तो दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। ऐसे ही रावण है। रावण है मोह यह कभी मरता नहीं है। किसी एक महात्मा के अन्दर खतम होता है, संसार से तो जायगा नहीं। भगवान राम जब चित्रकूट में थे। तो अत्रिमुनि ने बताया कि विराध नाम का राक्षस है, जो ऐसे कुछ मुनियों को खा जाता है, जिनको असावधान होते देखता है। उनको खा जाता है। नर भक्षी है। तो वह उन मुनियों को खा जाता था, जो लंगोटी के कच्चे थे, लालची थे, जो अन्दर से कमजोर थे, जीव के

कच्चे थे, तो उनका तो भक्षण होना ही है। बुराई आ गयी, अगर उसे सजा नहीं हुयी, तो सद्गुण हल्ला मचायेंगें, कि इसको सजा क्यों नहीं हुयी? इसलिए जो साधक साधना नहीं करता, असावधान हो जाता है, गन्दा हो जाता है। मन को विषयों में दौड़ा देता है, उसको तो खा ही लेगा। नहीं खायेगा तो नियमावली भंग होती है। कोई डाकू है, और वह पकड़ गया। उसे सजा हो गयी। तो सजा तो उसे होनी ही चाहिये। चाहे हम हों, चाहे तुम हो, चाहे कोई हो। इसलिये इस सृष्टि में जो कोई भी है, सब भगवान ही तो है। ईशावास्यमिदंसर्वम्। चाहे रावण हो, चाहे सूपनखा हो, चाहे सुबाहु हो, चाहे कोई भी हो। यह तो जब तक क्लियर दिग्दर्शन नहीं होता, तब तक की यह खोजबीन है। इसलिए हम कहते हैं कि भूत को उसी के जैसे झूठ-मूठ मंत्रों से मारा जाता है। बाहरी दुश्मनों को,औजारों से मारा जाता है।

साधक जब साधना नहीं करता, तो उसके सामने यह संसार का रूप रहता है। भगवान बाहर खड़े रहते हैं, गौण रहते हैं, और चारों तरफ विहार रहता है। और जब थोड़ा सहारा बौद्धिक स्तर का मिल जाता है, तो सोचता है कि हम लाइन में तो आ गये, लेकिन अभी साधना करनी बाकी है। ये माया में जितने काम, क्रोध, मोह आदि दुश्मन हैं, ये मरते ही नहीं हैं। ये मर जायें सब। यह माया मर जाय, तो भगवान मिल जाय। तो उसके अन्दर दो समूह बन गये। माया के समूह को बुरा मान लिया, भगवान के पक्ष को भला मान लिया। बुराइयों को दुश्मन बना लिया, भलाइयों की मदद से इन्हें खतम करता है।अगर सद्गुरु की कृपा मिल गयी, तो साधना की युक्ति पा जाता है। और सद्गुणों के द्वारा, दुर्गुणों पर विजय पा लेता है, तो वहाँ थोड़ा मोरल (हौसला) ऊंचा हो जाता है। कुछ गर्मी आ जाती है। ताकत मिल गयी। तो ठकुरई आ जाती है। यह साधना अच्छी श्रेणी की है। बैचलर लेवल (स्नातकस्तर) की है। अब साधक को मालूम रहता है। कि ज्ञान जो मिल गया, हमें उसे आलिंगन नहीं करना है। अगर ज्ञान का आलिंगन किया, तो जो अज्ञान समाप्त किया गया था, वह फिर से जिंदा होकर खड़ा हो जायेगा। क्योंकि ज्ञान का ज्ञान में अकेले ज्ञान नहीं हो सकता, बिना अज्ञान के। इसलिए ज्ञान को पकड़े रहना ठीक नहीं। तो कुशल साधक समझता है, कि अब यह सब जिनकी सहायता से मैंने रावण आदि को मारा है, उन्हें बिदा करना है। राम ने यही किया। जब रावण को मार कर आये, तो बंदरों से कहा, कि देखो भाई! अब जो मेरा काम था, वह समाप्त हो गया। अब तुम सभी लोग जाओ, सब जाओ। तो कोई प्रार्थना करता है, कोई रोता है, कि हे भगवान! आपको छोड़कर हम कहां जायें। तो राम ने कहा, कि नहीं नहीं, तुम सब जाओ। विभीषण अब तुम अपना काम देखो। सुग्रीव, तुम अपना काम

देखो। अंगद तुम अपना काम देखो। जामवंत, तुम अपना काम देखो। तो अब एक श्रेणी और बढ़ गयी। अब वहां न सजातीय रह गये, न विजातीय रह गये। अब आकाशवत हो गया, विस्तृत हो गया। अब उस जगह दो तीन मुरासिले और हैं। तो इस तरह से तुम किसी भी तरीके से इसमें लग जाओ तो आगे रास्ते का ज्ञान होता जाता है।

जैसे बताया जाता है, कि कुंभकरण क्रोध का प्रतीक है। और मोह का रूप रावण है। अब अगर इन्होंने तपस्या करके वरदान प्राप्त किया, तो पूछा जा सकता है, कि क्या क्रोध और मोह भी कभी तपस्या करते हैं? क्या उन्हें ऐसा होना चाहिये? तो देखो, अध्यात्म है तो अन्दर की चीज़, लेकिन वह स्थूल जगत पर आधारित है। अब जैसे नारद के भी माता-पिता रहे। इन्द्र के भी रहे। सनक सनंदन के भी माता-पिता हुये। यहां तक कि पृथ्वी, जल, वायु, आकाश के भी माता-पिता कहे गये। लेकिन क्या यह बात किसी के दिमाग में आयेगी? कि पृथ्वी के माता-पिता भी हो सकते हैं? उसी तरह जैसे तुलसीदास ने लिखा है, कि शंकर जी की सती नाम की जो स्त्री थी, जब पिता के यज्ञ में मर गयी, तो पार्वती के रूप में हिमांचल के द्वारा, मैना नाम की स्त्री से पैदा हुयी। हिमालय तो पहाड़ है, अब यह बात किसी के दिमाग में कैसे आयेगी? इस तरह के बड़े विचित्र-विचित्र कथानक भरे पड़े हैं। तो इनको हमें अन्तःकरण में ट्रांसलेशन करना पड़ेगा। अब शंकर जी के विवाह में, सारे देवता बराती रहे, भूत-प्रेत भी बराती रहे। शंकर-पार्वती अनादि देवता रहे। उधर विवाह के समय गणेश की पूजा करते हैं, जबकि गणेश इन्हीं के पुत्र कहे गये हैं। इस तर्क का समाधान तुलसी दास जी ने इस तरह से किया है कि-

कोउ अस संशय करै जनि, सुर अनादि जिय जानि।

ये देवता अनादि हैं, अजर-अमर हैं, अलौकिक हैं। तो इस तरह से इनका समाधान ऐसे नहीं मिल सकता है। जब हम साधना में उतरेंगे, तो समझ में आयेगा कि बाहर की दुनिया के अलावा एक अंतर्जगत भी है। शरीर जो यह दिखता है, यह तीन हिस्सों में बंटा है। 1. स्थूल शरीर, 2. सूक्ष्म शरीर, 3. कारण शरीर। स्थूल शरीर पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश पाँच तत्वों का है। सूक्ष्म शरीर 17 तत्वों से बना है जो है तो स्थूल के साथ, लेकिन उससे पृथक है। सो जाने पर यह सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीरके साथ नहीं रहता। मरने पर, स्थूल शरीर को, सूक्ष्म शरीर छोड़ देता है। इसलिए मानना तो पड़ेगा, कि दोनों अलग-अलग हैं। और उसके अन्दर कारण शरीर, जो बोल रहा है, यह अलग है। स्थूल शरीर का अधिष्ठाता शंकर। सूक्ष्म

का ब्रह्मा, और कारण का विष्णु है। तीन शरीरों के तीन अध्यक्ष होते हैं। ये मिल कर काम करते हैं। इसलिए तीनों शरीर मिलकर एक हो जाते हैं, अलग रहते हुये भी। अब इसमें एक सजातीय अवयवों का समूह है। और एक विजातीय पार्टी है। तो यह ब्रह्मा तो दोनों को बनाता है। सजातीय-विजातीय दोनों का है वह।

तो सृष्टि में संतुलन बनाये रखना उसका काम है। बताओ अब दुनिया में लड़की ही लड़की पैदा हो जायें, तो काम कैसे चलेगा? संतुलन बिगड़ न जायेगा? इसलिए ब्रह्मा रावण, कुम्भकरण को भी वरदान देता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विजातीय तत्व, और ज्ञान, वैराग्य, विवेक, सन्तोष, क्षमा, दया आदि सजातीय, दोनों रहेंगे। तभी इस संसार का संचालन, ईश्वरीय संविधान के अनुसार होता है। इसलिए जो भी काम करे, उसमें ब्रह्मा का आशीर्वाद ज़रूरी हो जाता है। हम जब अन्तःकरण के स्तर पर साधना में उतरते हैं, तो हमारे अच्छे विचारों को भी उसका आशीर्वाद मिलता है, और यदि बुरे विचार आते हैं, तो उन्हें भी वह आशीर्वाद दे देगा। जब हम त्याग की वृत्ति अपने में लावेंगे, तो वह ब्रह्मा हमारे त्याग में वृद्धि करेगा, और यदि हम मोह को लायेंगे, तो मोह की वृद्धि कर देगा। क्रोध की वृद्धि कर देगा। इसलिए उसने रावण को, कुम्भकरण को, और विभीषण को, उनकी रुचि के अनुसार आशीर्वाद दिया। अध्यात्म में रावण मोह है। मोह की वृत्ति हमारे अन्दर बढ़ जाती है। यही उसका तपस्या करना और वरदान पाना है। क्रोध तो बड़ा भयंकर होता है न? मोह में क्या है-मेरा है, मेरा है। बढ़ने पर वैसा विस्तार नहीं होगा, जैसा क्रोध में होगा। क्रोध तो सब चौपट कर देगा। सबको खा जायेगा। तो सरस्वती के द्वारा उसकी बुद्धि में परिवर्तन कर दिया, और कुम्भकरण ने 6 माह सोने का वर मांगा। उसे वर मिला-6 माह सोओ, और एक दिन के लिए जागो। तो यह एक महात्मा के हृदय की संरचना है। यह बाहर के इतिहास में ऐसी घटना हुई है कि नहीं, इससे हमें मतलब नहीं है। हुई भी है, तो पीछे हुई होगी। हमें अपने अन्तःकरण में, जहां से हमें मतलब है, वहां से लेना है। इसमें यह क्रोध है। क्रोध बहुत भयानक है। लेकिन यह हर समय बना नहीं रहता है। कुछ समय रहता है, फिर शान्त हो जाता है। 6 माह सोने का यह अर्थ है, कि हमारे अन्दर क्रोध निरन्तर जाग्रत रहने वाली बुराई नहीं है। लेकिन जब क्रोध जाग्रत होता है, तब विध्वंश कर देता है। सन् 62 में चीन और भारत में जाग्रत हुआ, युद्ध हुआ और पचासों हजार सैनिक मारे गये। यही तो कुम्भकरण के विषय में लिखा है। जब एक दिन को जागता था, तो हजारों घड़े मदिरा, हजारों भैसें खा-पीकर, विध्वंश करके, फिर सो जाता था। यही तो हुआ हिमालय में। थोड़े समय के लिए जागा, पचासों हजार को खा गया। फिर सो गया,

फिर दो तीन साल बाद पाकिस्तान के युद्ध के रूप में फिर जागा। कितना बड़ा आकार है इस क्रोध का? ऐसे होता है-क्रोध। यह तो बाहर की बातें हैं। हम तो अन्तःकरण की बात करते हैं। तुम तो मानव हो, मानव के अन्दर अनेक देवता और अनेक राक्षस रहते हैं। इन सभी की अपनी-अपनी क्षमताएं है। सभी को वरदान मिले हुये हैं। किसी को ब्रह्मा का, किसी को देवताओं ऋषियों से वरदान मिला है। तो देखो शरीर ही ब्रह्माण्ड है। इसमें आसक्ति लंका है। मोह रावण है, क्रोध कुम्भकरण, काम रूपी मेघनाद इसमें रहते हैं। काम मेघनाद है। यह बड़ा प्रभावशाली तत्व है। भगवान राम ने जब लंका विजय कर लिया, तो ब्रह्मा आदि देवता और ऋषि मुनिआये उनके पास। उनमें कुम्भज श्रेष्ठ थे। राम की स्तुति करने आये। उनसे राम ने यह प्रश्न किया, कि मेरे इस वनवास में कोई बड़ी भारी संतुलन बिगाड़ने वाली स्थिति नहीं आयी, लेकिन इस मेघनाद ने डावाँडोल कर दिया है। उसमें कौन सी ऐसी बात है? आप लोग बताइये।

मेघनाद को इस तरह से राम ने सबसे ज़्यादा ताकतवर माना है। यह रावण से अधिक बलवान था। था तो उसका लड़का, लेकिन उससे अधिक शक्तिशाली था। रावण को इन्द्र ने जीत लिया था- तो फिर इसने जाकर इन्द्र को हराया और अपने पिता को छुड़ा लाया था। इसलिये इसको टाइटिल (उपाधि) मिली थी- इन्द्रजीत कहलाता था। बादल के समान इसकी गर्जना थी, इसलिए मेघनाद कहलाता था। यह मेघनाद है, काम। इसका आकार, प्रकार रावण और कुम्भकर्ण की तरह बड़ा और भयानक नहीं है। कहीं आया तो नहीं ऐसा? दो हाथ, दो पैर का साधारण सा दिखाया जाता है। लेकिन सबसे ज़्यादा बलवान-

मुनि विज्ञान धाम मन, करै निमिष महं क्षोभ।

बड़े-बड़े ऋषि मुनि भी, जहां स्त्री के सम्पर्क में आये, तो नष्ट हो गये। उनकी सारी तपस्या नष्ट हो जाती है। इस तरह से कामदेव सबसे बलवान है। अब देखिए गोस्वामी जी ने संरचना किस तरीके से किया है। कुम्भकर्ण को सबसे ज़्यादा भयंकर और लम्बा चौड़ा दिखाया है, जो क्रोध के मामले में ठीक बैठता है। देश-विदेश, चीन पाकिस्तान तक विस्तार हो जाता है इसका। मोह रावण को भी दस सिर, बीस भुजा वाला दिखाया है। राजा है मोह। हनुमान ने लंका जला दिया, रावण ने मय दानव से कहा, फिर वैसी ही बना दिया। यह मन ही, मय दानव है। विनय पत्रिका में गोस्वामी जी कहते हैं -

बपुष ब्रह्माण्ड सुप्रवृत्ति लंका, रचित मन मय मनुज रुप धारी।। मोह के अधीन है- मन। मैं मेरा यही मोह है। मन इसी में लगा रहता है। इस तरह से इसको अन्दर से लेना पड़ेगा। लोभ नारान्तक है। कपट कालनेमि है। अभिमान अहिरावण है। इसी अन्तःकरण में एक तरफ विजातीय रहते हैं। इसी में दूसरी तरफ सजातीय तत्व हैं। सूक्ष्म शरीर में अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब जो ब्रह्मा है, वह दोनों को वरदान देता है। अब तुम्हें चाहिये कि बुराई और अच्छाई में लड़ाई रच लो। अच्छाइयों से बुराइयों को जीत लो। और जब बुराई नष्ट हो जाय, तो अच्छाइओं को भी बिदा कर दो। अगर इनका त्याग नहीं किया गया, तो अन्योन्याश्रय दोष से फिर विजातीय तत्व जीवित हो जाते हैं। यह आटोमैटिक सिस्टम है। इसलिए उस अवस्था में सजातीय पार्टी का भी त्याग करे। फिर त्याग का भी त्याग कर दे। ज्ञान से जब अज्ञान को जीत लिया जाता है, तो अज्ञान, ज्ञान में बदल जाता है। जब ज्ञान का त्याग कर दिया जाता है, तो विशेष ज्ञान बन जाता है, और जब उसका भी त्याग किया गया, तो तुर्या मिल गया। हम आगे निकल गये। हम सर्कुलेशन से बाहर हो गये। इतना करना है। यह साधना का कोर्स है।

हरिः ओम